Received: Jan '23
Revised:
Accepted: Feb '23

© 2023 by the authors. This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY) license (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/).

THE CHANGING NATURE OF WOMEN AND MEDIA
नारी का बदलता स्वरूप और मीडिया

Dr. Jyoti Yadav
Assistant Professor, Govt. N.M. College, Hanumangarh, Rajasthan, India

ABSTRACT

The media is playing a part in the empowerment of women, and on the other hand, the changing nature of women is visible via various mediums of the media. One way that the media is playing a role in the empowerment of women is by shedding light on the changing nature of women. The media is doing the work of creating public awareness about the rights of women and their independent power, while also presenting the true picture of the various forms of change that are taking place in the lives of women due to the changes that are taking place at the economic and social levels of society. This work is creating public awareness about the rights of women and their independent power.

यह सदी मीडिया की है। सूचना क्रांति ने इसके फलक को और भी विस्तृत किया है। विश्वराष्ट्रीयता, उदारीकरण, भू–मण्डलीकरण और बाजारवाद के कारण इसका महत्व बढ़ता ही गया है। स्वतंत्रता के बाद नारी के नारीत्व को मजबूत करने में मीडिया ने विशेषकर प्रिंट मीडिया ने अहम् भूमिका निभाई है। साहित्य ने नारी के पक्ष और विपक्ष, दोनों को लिखा है। मीडिया नें नारी की समस्याओं, उनकी जीवनचर्या, सामाजिक स्थिति और यथास्थिति से उनके मोह भंग को अधिक उजागर किया है। पुरानी और परम्परित नारी की देह से निकलकर जिस नयी और आधुनिक नारी का जन्म हुआ है, उसका सर्वाधिक श्रेय मीडिया को ही जाता है। नारी विमर्श के नाम पर लिखे गये आलेखों, भाषणों और परिचर्चाओं में नारी समस्याओं में समाधान की अपेक्षा विवाद और बहसों ने ही अधिक समय लिया है।

एक समय था जब नारी को घर से बाहर पॉव रखने की मनाही थी, उनका नौकरी करना प्रतिष्ठाजनक नहीं था। मीडिया ने उनके इस प्रतिबंध को ढीला ही नहीं किया, कहीं तो पूरी तरह तोड़ भी दिया है। आज के सामाजिक दृष्टिकोण में काफी बदलाव आये हें। नारी के देवी, पूजनीय स्वरूप का प्रचार भी मीडिया ने किया इसी के साथ–साथ मीडिया ने ही उनके कुरूप, विडम्बनापूर्ण एवं दयनीय चेहरे को भी दिखाने में कोई परहेज नहीं किया। इस संबंध में लिखा भी गया है कि–''केवल राष्ट्रीय स्वतंत्रता के खो जाने से तुम्हें कैसा मलिन, कैसा व्याकुल, कैसा दुखित बना दिया है? फिर स्वयं सोचो जिसकी शरीर की, जिसकी आत्मा की, जिसके हृदय की सारी स्वतंत्रता लुट गयी है, उसका हार्दिक भाव कैसा हो सकता है?[1] आजादी के पहले परम्परा, संस्कार, रीति–रिवाज में लिपटी हुई नारी ने पुरूष की मुखापेक्षिता के अलावा कुछ नहीं जाना। पुरूषों के मनमाने शोषण–दमन की आग में वे जलती रही। उनके जीवन में निजता की कोई चीज नहीं थी। पुरूष मानसिकता यहॉ पूरी तरह हावी है। कथाकार चित्रा मुद्गल की टिप्पणी इस लिहाज से प्रासंगिक है– ''विज्ञापन–सुन्दरियां की चकाचौंध दरअसल बाजार द्वारा स्त्री–दिमाग को धकियाने और उसकी देह पर कब्जा जमाने की भी युक्ति है। भले ही कुछ उत्तर आधुनिक चिन्तन इसे खुलापन और स्त्री की आजादी का नाम दे, पर इस बिक रही स्त्री का खरीददार कौन है? पुरूष ही न। पहले खरीदने के लिए दूर जाना पड़ता था, आज वह सर्वसुलभ है। देह से मुक्ति के मायने देह–ग्रस्त होना हो गया है। पहले नाभिदर्शना साड़ी होती थी, अब जींस और बाकी पहनावे भी हो गये हैं। देह पर अतिरिक्त जोर का आलम यह है कि शिक्षाल्य तक में रैम्प और फैशन परेड का विस्तार हो गया है।[2]

इन बातों को आगे कर दरअसल औरतों के मूलभूत मुद्दों–शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य सुविधाओं को दरकिनार कर दिया जाता है। इसका सबसे दुःखद पहलू यह है कि इन मुद्दों को किनारे करके नारी स्वातन्त्र्य के बने–बनाये फार्मूले को आगे कर दिया जा रहा है। यह सब कुछ बाजार के व्यापक प्रसार के फलस्वरूप ही हो रहा है। ''बाजारीकरण के दौर में स्त्री–स्वातन्त्र्य की ये परिभाषाऍं पुरूष की ललक, कामभावना आदि को सन्तुष्ट करने के नुस्खे भर है। इसके कारण स्त्री–स्वातन्त्र्य की बात आज खतरे में दिखाई दे रही है। सिनेमा, टी.वी. से लेकर इसका विस्तार ''हैलो दिल्ली'' जैसे अखबारी परिशिष्टों तक हो गया है। इन सबके मूल में सिर्फ स्त्री के वस्तुकरण की इस प्रक्रिया पर नकेल कसना ही आज स्त्री की सबसे बड़ी चुनौती है।''[3]

''अक्सर चैनल वाले यह तर्क पेश करते हैं कि ''हम वही दिखाते हैं, जो जनता चाहती है'' या ''वही दिखता है, तो बिकता है।'' वे खम ठोककर यह कहते मिल जाते हैं कि हमारा काम जनता की रूचि को भुनाना है। उसकी रूचि का निर्माण करना नहीं। रूचि जगाना मीडिया का लक्ष्य नहीं है और न उसकी जरूरत।''[4]

उपभोक्ताओं को आप अपनी बिक्री के लिए तैयार करें और बाकी प्रोग्रामों के लिए 'जनता यही मांगती है' का तर्क दे? यह डुगडुगी बजाकर बन्दर तमाशा दिखाने के बाद ताकत की गोलियां बेचने का हथकण्डा नहीं है।''[5]

समाज में नारी के बदलते स्वरूप की झॉकी मीडिया के क्षेत्र में भी देखी जा सकती है। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी पुरूष सत्ता का ही आरम्भ से वर्चस्व रहा है और आज महिला पत्रकार इस वर्चस्व को तोड़ रही है। मीडिया में निरन्तर महिलाओं के जीवन और उनकी समस्याओं से संबंधित विमर्शों का दौर चलता रहता है। विभिन्न लेखों और फीचरों के माध्यम से नारी और पुरूष लेखक नारी जीवन में आने वाले बदलावों को बखूबी रेखांकित करते रहे हैं। इसके माध्यम से न केवल समस्याओं को उठाया जाता है वरन् उससे जूझने के तरीके भी सुझाए जाते हैं। साथ ही नारी जीवन की कठिनाइयों से निकलकर सामाजिक चुनौतियों को स्वीकार करने की प्रेरणा भी दी जाती है। इस संबंध में मेहरून्निसा परवेज का मानना है– ''यह सही है कि अस्सी नब्बे के दशक में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। बढ़ती नारी साक्षरता और सामाजिक दृष्टिकोण में बदलाव ने उसकी क्षमता को मान्यता दी है तथा उसके व्यक्तित्व विकास के साथ ही साथ उसे हर क्षेत्र में पुरूषों से बराबरी सिद्ध करने का मौका दिया है। मीडिया ने महिला उत्थान की गति को नयी तेजी और आयाम दिये हैं। महिला लेखन से महिलाओं को पूर्ण रूप से ''फीड बैक'' मिलता है। नारी लेखन नारी की ही अभिव्यक्ति है।''[6]

मीडिया ने पूर्व व्यवसायिकता को अपनाकर वैश्वीकरण और बाजार के प्रति अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की है। मीडिया के वैश्विक परिप्रेक्ष्य तथा बाजार का विश्वव्यापी अभियान जिसे हम नवपूंजीवाद के भूमण्डीलकरण का अभियान कह सकते हैं। इसमें मीडिया की भूमिका बाजार के वाहक के रूप में परिभाषित की जा सकती है। उसने बाजार को पूरे विश्व में फैलने में मदद की और बाजार ने पूॅजीवाद को वैश्विक स्वरूप प्रदान किया और इस प्रकार छोटे और गरीब देशों की अस्मिता पर संकट उत्पन्न हो गया। इसे संस्कृति संकट कहा जा सकता है। समाजशास्त्री सच्चिदानन्द सिन्हा कहते हैं –''आज के सांस्कृतिक परिदृश्य में दो बाते महत्व की है, एक तो यह कि विभिन्न संस्कृतियों के विकास में भिन्नता के कारण विभिन्न वस्तुओं के प्रति उनकी भावना में भिन्नता है। इनमें प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति की सम्भावना के सीमाहीन होने के कारण यह सम्भावना बनती है कि विवादों को अतिरंजित करके दिखलाया जाये और दूसरे, समूह या आराध्यदेव को अत्यधिक निकृष्ट बताया जाये और अपने समूह या राष्ट्र को सर्वश्रेष्ठ बताया जाये।''[7]

संचार के क्षेत्र में आज मीडिया जबरदस्त भूमिका निभा रहा है। रामशरण जोशी कहते हैं .....''संचार के इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों ने राष्ट्रों की अभेद्य व पवित्र समझी जाने वाली सम्प्रभुता एवं भौगोलिक सीमाओं और सामाजिक सांस्कृतिक अस्मिताओं को भी पहले जैसा स्थायी नहीं रहने दिया है। दक्षिण–पश्चिम एशिया की मध्ययुगीन मूल्य–दृष्टियों पर आधारित व्यवस्थाएँ एवं राजसत्ताएँ टी.वी. बीम हमलों के सामने लाचार खड़ी है। इससे पूर्व औद्योगिक युग के मानदण्डों पर चलने वाले इन समाज के समक्ष भविष्य में सर्वाइवल का सवाल पैदा हो गया है, वे देख रहे हैं कि इलेक्ट्रॉनिक तरंगे उनके ममूलभूत विश्वासों को बींध रही है।[8]

विश्वासों को बींधने का अर्थ यह नहीं कि मीडिया रूढ़ियों और अंधविश्वासों से मुक्ति दिला रहा है, इस रूप में इसकी भूमिका प्रगतिशील कही जाएंगी और एक हद तक उसने प्रगतिशीलता दिखलाई भी है, किन्तु संकट की बात यह है कि वह संबंधित देश या समाज के उन सांस्कृतिक मूल्यों, कायदों और जीवनबांध पर हमला कर रहा है। जो उनकी विशिष्टता के, बल्कि उनके स्वतंत्र अस्तित्व के द्योतक है।

यह इतिहास की विकास यात्रा की विडम्बना ही कही जायेगी कि जिस मीडिया ने नारी को घर की देहरी की दहशत से बाहर निकाला, उसी ने उसकी देह को बाजार के दौर में पुरूषों की असंयमित भोग लिप्सा का माध्यम बना दिया। कुछ लोग इसे मीडिया की क्रांतिकारी भूमिका कहते हैं। सुधीश पचौरी का कथन है––''समाज में स्त्रियों का बाहर निकलना, उन्हें उनकी वाणी का मिलना टी.वी. के विज्ञापनों सीरियलों में नारी की प्रक्षेपित नयी छवि से जुडा है। इससे समाज में लिंग–भेद के आधार पर होते आये देह–शोषण के अनन्त रूप में अचानक स्त्री जाति से चुनौती पाने लगे हैं। स्त्री जाति की जगह बढ़ी है और लिंगधारित शोषण के विरूद्व आवाज बढ़ी है.... स्त्री का स्त्री के रूप में विशेष पाठ का सम्भव होना इस माध्यम क्रांति के बिना सम्भव नहीं था। माध्यम ही तसलीमा को बचा सके अन्यथा धार्मिक कुठमुल्ले उनकी वही हालत करते जो उनके फासिस्ट दिमागों ने इस्लाम के नाम पर तय की दी।''[9] निश्चय ही कठमुल्लों से तसलीमा को बचाने और इस रूप में नारी छवि के प्रति प्रगतिशील रूख दिखलाने में मीडिया की भूमिका रही है।

वास्तव में पाश्चात्य सांस्कृतिक प्रहार और अंधधार्मिकता दोनों का उभार पिछली सदी के अन्तिम दौर में हुआ और इनको आज हम चरम रूप में देख रहे हैं, तो इसमें मीडिया की जबरदस्त भूमिका है। इस प्रकार एक अर्न्तविरोधग्रस्त और विडम्बनापूर्ण नारी छवि का निर्माण आज मीडिया कर रहा है। नृत्य संगीत की प्रतियोगिताएं, जो टी.वी. पर दिखलाई जाती है, उसमें स्त्री की बेहद फूहड़, विकृत और कामुकतापूर्ण छवि ही उभरती है, जिसकी ऑधी में उसके अस्तित्व से जुड़े बुनियादी सवाल गुम हो रहे हैं।

स्त्री के भूसांस्कृतिक महत्व को गौण करके उसे देह में केन्द्रित कर दिया है। मीडिया ने और उसको

ग्लोबल बाजार का एक उत्पाद बना दिया है। स्त्री छवि के इस परिवर्तन के बारे में प्रभा खेतान कहती है कि – ''कुछ के लिए यह परिवर्तन वरदान के रूप में है तो बहुतेरो के लिए हानिकारक साबित हुआ है।[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मीडिया जहॉ एक ओर नारी के सशक्तीकरण में भूमिका का निर्वाह कर रहा है, वहीं मीडिया के विभिन्न माध्यमों पर नारी का बदलता हुआ स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहा है। मीडिया नारी के अधिकारों तथा उसकी स्वतंत्र सत्ता के प्रति जनजागृति का कार्य कर रहा है, वहीं से समाज में आर्थिक और सामाजिक स्तर पर होने वाले परिवर्तनों के कारण नारी के जीवन में आने वाले बदलाव के विभिन्न रूपों की सच्ची तस्वीर हमारे सामने उपस्थित कर रहा है।

ग्रन्थ सूची

1. स्त्री दर्पण, मई, अंक 1918
2. बया – चित्रा मुद्गल, पृ.29
3. वही, पृ.30
4. आधुनिक एवं हिन्दी कथा–साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप पृ.375
5. हंस, जनवरी, 2007, पृ.9
6. इण्डिया टूडे, साहित्य वार्षिकी, 1977
7. भूमण्डलीकरण की चुनौतियॉ, पृ.33, वाणी प्रकाशन
8. मीडिया विमर्श, सामायिक प्रकाशन, दिल्ली, पृ.4
9. मीडिया और साहित्य, राजसूर्य प्रकाशन, 1998, पृ.29
10. बाजार के बीच, बाजार के खिलाफ भूमण्डलीय और स्त्री के प्रश्न, फलैप वाणी प्रकाशन,2004